मुख्य बिंदु

जीवन का संगीत सुनो

‘जीवन का संगीत सुनो। उसे खोजो और पहले उसे अपने हृदय में ही सुनो। आरंभ में तुम कदाचित कहोगे कि यहां गीत तो है ही नहीं, मैं तो जब ढूंढता हूं तो केवल बेसुरा कोलाहल ही सुनाई देता है। और अधिक ढूंढो। यदि फिर भी तुम निष्फल रहो, तो ठहरो और भी अधिक गहरे में फिर ढूंढो। एक प्राकृतिक संगीत, एक गुप्त जल-स्रोत प्रत्येक मानव हृदय में है। वह भले ही ढंका हो, बिलकुल छिपा हो, और नीरव जान पड़ता हो—किंतु वह है अवश्य।’

‘जीवन का संगीत सुनो।’

लेकिन इसे सुनने की पहली शर्त है कि उसे पहले अपने हृदय में सुनो। नहीं तो यह बाहर सुनाई नहीं पड़ेगा। हम बाहर संगीत सुनते हैं। शायद सोचते भी हैं कि संगीत समझ में आ रहा है। सिर भी हिलाते हैं, आनंदित भी होते हैं। लेकिन अगर भीतर का संगीत नहीं सुना है, तो यह सब ऊपर-ऊपर की बात है, इससे संगीत में प्रवेश न हो पाएगा।

संगीत अध्यात्म है। और जब तक आपके हृदय में राग का अनुभव न होने लगे, और जब तक आपकी श्वास-श्वास में एक लयबद्धता न आ जाए, और जब तक आपका जीवन-स्पंदन वीणा न बन जाए; जब तक आपको भीतर न सुनाई पड़ने लगे वह नाद, जो जीवन का नाद है, जिसको पैदा नहीं करना होता, जो चल ही रहा है, जो आप हैं ही; जब तक आपको वह सुनाई न पड़ जाए, तब तक इस जगत में जो अनंत संगीत गुंजायमान हो रहा है, उससे आपकी कोई पहचान न होगी। और एक बार आपको अपने हृदय में सुनाई पड़ जाए वह नाद, तब आप पाएंगे कि हर तरफ, झरने की कलकल में, हवाओं का गुजरना वृक्षों के पत्तों के बीच से, उसमें; पत्थर के गिरने में, नदी के बहने में, नीरवता में, रात्रि के सन्नाटे में, झींगुरों की आवाज में, सब तरफ आपको अपने हृदय की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ने लगेगी। यह जगत एक संगीत हो जाएगा।

लेकिन यह होगा उस दिन, जिस दिन हृदय को सुना जा सके।

क्यों? क्योंकि हृदय इतना निकट है कि जब आप उसका संगीत नहीं सुन पाते, तो और सब चीजें तो दूर हैं, उनका संगीत आप न सुन पाएंगे। तारे बहुत दूर हैं, उनका संगीत आपको कैसे सुनाई पड़ेगा? और हृदय इतना निकट है, उसका ही सुनाई नहीं पड़ रहा है!

जो निकटतम है, उससे यात्रा शुरू करो।

पुराने दिनों में—बहुत पुराने दिनों में, इतिहास ने जिसका स्मरण भी छोड़ दिया है—संगीत की शिक्षा ध्यान से शुरू होती थी। क्योंकि वाद्य पर क्या करोगे, कंठ से क्या होगा, जब तक हृदय के संगीत का स्वर अनुभव न होने लगे? नृत्य की शिक्षा ध्यान से शुरू होती थी। क्योंकि शरीर को हिलाने से क्या होगा? जब तक कि स्पंदन भीतर न आने लगे, जब तक की भीतर विद्युत प्रवाहित न होने लगे, जब तक कि भीतर कोई न नाच उठे—तब तक शरीर को हिलाना कवायद होगी, तब तक वह नृत्य नहीं होगा। और चाहे कितनी ही कुशलता आ जाए शरीर को नचाने की, वह कुशलता टेक्निकल होगी, हार्दिक नहीं होगी। उसमें कहीं भी हृदय नहीं होगा, कुशलता होगी। और कुशलता बहुत गहरी हो सकती है। फिर भी आत्मा नहीं होगी, शरीर ही नाचेगा। वही फर्क है।

बड़े से बड़ा संगीतज्ञ भी नाच सकता है, नृत्यकार नाच सकता है। बड़े से बड़ा संगीतज्ञ संगीत को जन्म दे सकता है। लेकिन कृष्ण के नृत्य में बात कुछ और है। टेक्निकली वह गलत भी हो सकते हैं। उसके नृत्य में भूल-चूक खोजी जा सकती है। और पंडितों को लगा दें, तो वे जरूर खोज लेंगे। लेकिन फिर भी उनका नृत्य किसी और आयाम में है।

मीरा के संगीत में भूल-चूक खोजी जा सकती है, काव्य में भूल-चूक खोजी जा सकती है, व्याकरण में भूल-चूक खोजी जा सकती है। क्योंकि मीरा न तो कोई कवि है, न वह कोई नर्तकी है, न वह कोई संगीतज्ञ है। लेकिन फिर भी किसी अंतस के कोने में, गहरे में, संगीत घटा है, नृत्य घटा है, काव्य का जन्म हुआ है। वही काव्य, वही नृत्य शरीर तक आ गया है, बाहर तक फैल गया है। इसलिए उसके नृत्य में कुछ बात ही और है। वह इस जगत का नहीं हैं नृत्य। तो वह कहीं पार से आती है कोई किरण, वह कहीं दूर की खबर लाती है। इसलिए मीरा छा गई हृदय पर। बहुत बड़े संगीतज्ञ हुए, मीरा की कोई तुलना नहीं उनसे। टेक्निकली कोई उसका अस्तित्व नहीं है, लेकिन संगीतज्ञों को हम भूलते चले जाएंगे, मीरा को भूलना असंभव है।

चैतन्य नाचते हैं। उनके नाचने में न कोई व्यवस्था है, न कोई जानकारी है, नाचना अनगढ़ है। लेकिन नृत्य में कुछ प्राण है, कोई आत्मा है, नृत्य सजीव है। शरीर ही नहीं कंप रहा है, भीतर कहीं गहरे में स्पंदन हो रहे हैं। और शरीर उन स्पंदनों की केवल खबर दे रहा है।

नृत्य-संगीत जैसी सारी कलाओं का जन्म कभी मंदिर में हुआ था, उनका जन्म मंदिर से है। वे कलाएं मंदिर से फिर लोक-लोक में व्याप्त हो गई हैं। उनका प्राथमिक चरण कभी अध्यात्म की खोज का ही हिस्सा था। लेकिन धीरे-धीरे सभी चीजों के साथ होता है कि हम उसके बाह्य आवरण में ज्यादा उत्सुक हो जाते हैं। फिर बाह्य आवरण की व्यवस्था में उत्सुक हो जाते हैं। फिर हम इतनी व्यवस्था कर लेते हैं कि हम भूल ही जाते हैं कि जिसके लिए व्यवस्था कर रहे हैं, वह कभी का मर चुका है। अब हम शरीर की सजावट किए चले जा रहे हैं।

संगीत बहुत दूर चला गया अध्यात्म से, नृत्य बहुत दूर चला गया। इतने दूर की करीब-करीब उलटा हो गया है। करीब-करीब नृत्य और संगीत अब वासना की सेवा कर रहा है। कभी वह आत्मा से पैदा हुआ था, अब वासना की सेवा में रत है!

इसलिए इस्लाम को तो इनकार ही कर देना पड़ा संगीत को कि यह पाप है। यह हैरानी की बात है। मगर सोचने जैसी है।

हिंदुओं ने संगीत को श्रेष्ठतम समझा। संगीत की अनुभूति को परम-ध्यान समझा। और हजारों साल बाद जो आखिरी धर्म जमीन पर आया, इस्लाम, उसने संगीत को वर्जित कर दिया, कि मस्जिद के सामने संगीत नहीं बज सकता। संगीत को पाप घोषित कर दिया।

इस्लाम भी सही है और हिंदू भी सही हैं। जिस दिन संगीत पैदा हुआ था, उस दिन वह परम-ज्ञान का हिस्सा था, ध्यान का हिस्सा था। लेकिन धीरे-धीरे हटते-हटते वह वासना की सेवा में रत हो गया। और जब मोहम्मद का जन्म हुआ तो संगीत वासना की सेवा में रत था। वह कामवासना का हिस्सा हो गया था। इसलिए मोहम्मद ने कहा कि संगीत मस्जिद के सामने नहीं। तो वह पाप है। दोनों सही हैं। क्योंकि संगीत के दोनों बिंदु हैं, दो छोर हैं।

एक बात स्मरणीय है कि संगीत वासना की सेवा में लग जाएगा, अगर आपने उसे पहले भीतर न सुना। अगर बाहर सुना तो उसकी जो चोट है, वह आपके काम-केंद्र पर होगी। क्योंकि काम-केंद्र आपका सबसे बाहरी केंद्र है—सबसे निम्न, सबसे बाहरी। अगर आपने संगीत भीतर सुना, तब तो वह आत्मा में प्रतिध्वनित होगा। अगर आपने बाहर सुना तो उसकी पहली चोट, पहला आघात सेक्स सेंटर पर होगा, काम-केंद्र पर होगा, क्योंकि वही निकटतम है। और तब अनिवार्य रूप से संगीत काम की सेवा में संलग्न हो जाएगा।

तो कामातुर लोग नाच में रस लेते हैं, गान में रस लेते हैं। तो धीरे-धीरे राजा-महाराजाओं के दरबार की बात हो गई। साधु दूर हटता गया, क्योंकि असाधु संगीत का रस लेने लगा। लेकिन कारण संगीत नहीं

है, कारण अगर भीतर से पहले यात्रा न हुई, तो यह उलझन आएगी। अगर भीतर से यात्रा हुई, एक बार भीतर का संगीत अनुभव में आया, तो फिर जगत में जो भी संगीत संभव है—निर्मित, अनिर्मित, प्राकृतिक, कृत्रिम—वह सभी संगीत, एक बार भीतर का स्मरण आ जाए, तो वहीं चोट करेंगे।

नानक अपने साथ एक संगीतज्ञ को रखते थे। बोलते कम थे, गाते ज्यादा थे। और बगल में बैठा मरदाना अपने इकतारा को बजाता था। पर नानक पहले अजपा की शिक्षा देते थे। कि पहले भीतर अजप का जो नाद है, वह सुना जाए। और जब उनके साधक अजपा के नाद में लीन होने लगते थे, भीतर का नाद सुनने लगते थे, तब वे बाहर का संगीत भी साथ में देते थे। यह बाहर का भी संगीत तब भीतर के उस गहन संगीत के साथ एक हो जाता था। और जब बाहर और भीतर का संगीत एक होता है, तो बाहर और भीतर मिट जाते हैं, सिर्फ संगीत रह जाता है। वह संगीत का क्षण ब्रह्म-अनुभव का क्षण हो जाता है।

'उसे खोजो और पहले उसे अपने हृदय में ही सुनो। आरंभ में तुम कदाचित कहोगे कि यहां गीत तो है ही नहीं, संगीत तो है ही नहीं, मैं तो जब ढूंढता हूं तो केवल बेसुरा कोलाहल ही सुनाई पड़ता है।'

निश्चित ही, जब तुम पहली दफा भीतर जाओगे, तो सिवाय भीड़ और बाजार के वहां कुछ भी न मिलेगा। क्योंकि तुमने अब तक भीड़ और बाजार को ही अपने भीतर पहुंचाया है। तब वहां तुम शोरगुल सुनोगे। वहां व्यर्थ की आवाजें सुनाई पड़ेंगी। वहां खंड-खंड टुकड़े बातचीत के सुनाई पड़ेंगे, जिनमें कोई तुक भी नहीं है—संगीत तो बहुत दूर—जिनमें कोई संगीत भी नहीं है, जिनमें कोई संबंध भी नहीं है। अगर तुम बैठ जाओ एकांत में और तुम्हारे भीतर जो चल रहा है, उसे तुम कागज पर लिखो, तो तुम समझोगे कि यह कोई पागल है मेरे भीतर या बहुत पागल हैं मेरे भीतर।

अभी वैज्ञानिक सोचते हैं कि आज नहीं कल, ऐसा उपाय कर लेंगे कि आपकी खोपड़ी में विद्युत का यंत्र लगा कर एंप्लीफाई किया जा सके, कि वहां जो भीतर चल रहा है, उसे और लोग भी सुन सकें। कोई राजी नहीं होगा इस काम के लिए, कि आपके भीतर जो चल रहा है, उसे और लोग भी सुन लें। एक दफा औरों ने सुन लिया, फिर आपका कोई भरोसा नहीं करेगा। क्योंकि आप अपना एक चेहरा बनाए हुए बैठे हैं, वह बिलकुल नकली है। आप बड़े बुद्धिमान दिखाई पड़ रहे हैं, वह सब नकली है। वह भीतर जो चल रहा है, वह बिलकुल विक्षिप्त स्वर है वहां।

स्वभावतः जब आप भीतर जाएंगे तो पहले यह विक्षिप्तता ही सुनाई पड़ेगी। पहले आपको यही आवाजें सुनाई पड़ेंगी। उनसे डरना मत, घबड़ाना भी मत। और थोड़े प्रवेश की जरूरत है। साक्षीभाव से उन्हें सुनना, तो भीतर प्रवेश हो सकेगा। उनके विरोध में भी कुछ मत करना। क्योंकि विरोध में किया, तो वहीं उलझ जाओगे। उनसे लड़ना भी मत। क्योंकि लड़े, तो तुम भी एक हिस्सा हो जाओगे उस भीड़ में उपद्रव का। उपद्रव और बढ़ जाएगा। उनको रोकने की भी कोशिश मत करना, क्योंकि रोकने से उनसे छुटकारा नहीं है। और फिर जिसे हम रोकते हैं, उसकी छाती पर हमें बैठे रहना पड़ता है, उससे आगे नहीं जा सकते। उनके साथ कुछ करना ही मत। तटस्थ भाव से!

बुद्ध ने कहा है, उपेक्षा से भीतर की तरफ चलना।

वह चल रहा है शोरगुल, चलने देना। जैसे एक बाजार से तुम गुजर रहे हो, बाजार है। तुम उसकी चिंता नहीं ले रहे हो। ऐसे ही तुम इस भीतर के बाजार से भी गुजरते वक्त परेशान मत होना। एक उपेक्षा का भाव रखना कि ठीक है, बाजार है। अब तक यही इकट्ठा किया है, वह है। तुम चुपचाप साक्षीभाव से भीतर की तरफ चलना और गहरे खोजना।

— ओशो

साधना सूत्र, ग्यारहवां प्रवचन

(पूरा प्रवचन टेप पर भी उपलब्ध है)